संपूर्ण समाज
को संगठित करना
यही संघ कार्य है। संगठन
जीवमान समाज
की स्वाभाविक अवस्था है

केशव माधव पुस्तकालय
सोमनाथ मन्दिर के पास, पाली

संगठन
अर्थात् अंगांगीभाव यह
संघ की कल्पना
सामूहिक है। सामूहिक
क्रिया द्वारा समष्टि

# हमारी राष्ट्रीयता

## एक तर्कपूर्ण समर्थन

केशव माधव पुस्तकालय
सोमनाथ मन्दिर के पास, पाली

संस्कार द्वारा मनुष्यनिर्माण का कार्य संघ
का उद्देश है। संघ के विषय में
वादविवाद संघ के
लिये उपकारक सिद्ध हुअे हैं। विशेषज्ञ के हाथोंमें पडनेपर
क्षुद्र से क्षुद्र वस्तुसे भी उत्तम फल की
प्राप्ति होती है। इस दृष्टिसे
संघ संघटनशास्त्रका...

केशव माधव पुस्तकालय
सोमनाथ मन्दिर के पास, पाली

श्रीमान् दत्तोपंत ठेंगडी

२।८

# निवेदन

दि. २६ सितम्बर १९७० को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ नागपुर की ओर से नागपुर के महाविद्यालयीन छात्रों का सम्मेलन हडस हाईस्कूल के प्रांगण में आयोजित किया गया था । लगभग १५०० छात्र, दो सौ से अधिक प्राध्यापक तथा अन्य महाविद्यालयीन शिक्षणक्षेत्रसे संबंधित नागरिक इस कार्यक्रम में उपस्थित हुए थे । इस अवसर पर राज्यसभा के सदस्य, भारतीय मजदूर संघ के महामंत्री तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अनुभवी कार्यकर्ता श्रीमान् दत्तोपंतजी ठेंगडी द्वारा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्य के स्वरूप का तर्कशुद्ध विवेचन किया गया । उपस्थित छात्र, प्राध्यापक उनके भाषण से इतने प्रभावित हुए कि उनमें से अधिकांश ने इच्छा व्यक्त की कि भाषण प्रकाशित किया जाए ।

श्रीमान् दत्तोपंतजी ने भी भाषण के प्रकाशन की अनुमति दी इसके लिए हम उनके आभारी हैं ।

विलंब से क्यों न हो, भाषण प्रकाशित हो रहा है । भाषण में जो संदर्भ आए हैं वे अंत में स्वतंत्र रूप से एकत्र दिए गए हैं । आशा है कि सभी को इस भाषण के अनुशीलन से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्य का विशुद्ध स्वरूप समझने में सहायता मिलेगी ।

नागपुर
दि. २६-११-७०

**पु. मो. सोनटक्के**
कार्यवाह, भारतीय विचार साधाना

॥ श्रीः ॥

नागपुर का यह सौभाग्य रहा है कि यहां हिन्दुस्थान की राष्ट्रशक्ति का उदय हुआ। सन् १९२५ में इसीं नगर में परमपूजनीय स्वर्गीय डॉक्टर हेडगेवार जी ने संघ की नीव डाली और यहीं से संघ के कार्य का चारों ओर विस्तार हुआ। तब से आज तक संघ की दृष्टि से कई अनुकूल-प्रतिकूल अवसर आए परन्तु सभी परिस्थितियों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ आगे बढ़ता हुआ प्रगति करता गया और आज सभी प्रदेशों, सभी जिलों, सभी नगरों और ग्रामों में भी उसकी शाखाएँ पायी जाती हैं।

## भ्रान्त धारणाएँ

यद्यपि यह काम पुराना है तथापि यह दिखाई देता है कि इसके विषय में कई क्षेत्रों में सम्यक् जानकारी नहीं है। इतना ही नहीं भ्रान्त धारणाएँ भी हैं। इसके कारण कभी कभी संघ के स्वयंसेवक सोचने लगते हैं कि जब अपना संघ उत्तम है तब अन्य लोग इसे क्यों नहीं समझते हैं ? क्यों इसका विरोध करते हैं ? इसे भूल क्यों समझते हैं ? इसके प्रति क्यों उदासीन रहते हैं ? अपने कार्य के संबंध में ऐसी प्रतिक्रियाएँ क्यों हैं ? स्वयंसेवकों के मन में ऐसे विचार स्वाभाविक रूप से आते हैं। उनको कभी कभी ऐसा लगता है कि जो जो विरोध करनेवाले हैं संभवत: सारे ही अप्रामाणिक होंगे अन्यथा अच्छी बात का विरोध क्यों किया जाता ? किन्तु ऐसी बात नहीं है। जो संघ के समर्थक हैं वे जैसे प्रामाणिक हैं वैसे ही जो उदासीन हैं उनमें भी कई प्रामाणिक पाये जाते हैं और विरोध करनेवालों में भी कई प्रामाणिक लोग पाये जाते हैं। यह बात ठीक है कि आज के युग में लोग बहुत प्रगतिशील हो गये हैं और इसके कारण जिसमें अपना तुरन्त कुछ लाभ होगा वे ही बातें बोलना और करना युगधर्म हो गया है और जब यह दिखता है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को गाली देने से अपना कुछ लाभ हो सकता है, कहीं ना कहीं 'गद्दी' मिलने की संभावना है तब गाली देना भी एक आवश्यक बात मानी जाती है। परन्तु सभी लोग ऐसे नहीं हैं। प्रामाणिकता से संघ न समझने के कारण उदासीन रहनेवाले या विरोध करनेवाले लोग हैं। तो इसमें क्या उनका ही कसूर है ? ऐसा नहीं लगता। इसमें तो कुछ संघ का भी दोष है। संघ वस्तु ही ऐसी है कि यदि बाहर का व्यक्ति इसको तुरन्त न समझ सका तो उसको दोष देना ठीक नहीं है। किसी भी नई वस्तु की जानकारी सर्वसाधारण मनुष्य किस आधार पर प्राप्त कर लेता है ? मनोविज्ञान का यह नियम है कि नयी वस्तु की जानकारी पुरानी देखी

हुई, अनुभव की हुई वस्तुओं के आधार पर ही की जाती है, चाहे वह साम्य से हो या वैषम्य से हो, चाहे सादृश्यसे हो या वैदृश्य से हो या Compare and contrast से। इसलिए जो भाषाशास्त्र निर्माण हुआ है उसमें तरह तरह के अलंकार भी निर्माण हुए हैं जैसे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक। ये सारे अलंकार किस लिए हैं ? तो न देखी हुई वस्तु को समझने में सुविधा हो। इसलिये जैसे हम कहते हैं कि भगवान् के चरण कमल के समान हैं। अब किसी ने भगवान् के चरण तो देखे नहीं। अब उनके बारे में कल्पना कैसे की जाए ? जानकार लोगों ने कहा हमने भगवान् के चरण नहीं देखे हैं किन्तु कमल देखा है। इसलिए हम अनुमान लगा सकते हैं कि जैसा कमल कोमल होता है वैसे ही भगवान् के चरण कोमल होंगे, कमल सुगंधित तथा पवित्र होता है वैसे ही चरण भी सुगंधित और पवित्र होंगे। इस प्रकार कुछ न कुछ ज्ञान हमें हो जाता है। अब इसी प्रकार बाहर का व्यक्ति भी संघ को समझने का प्रयास करता है।

## संघ याने संपूर्ण हिन्दू-समाज

हमारी यह धारणा है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अर्थात् हिन्दूसमाज-निःशेष हिन्दूसमाज है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ यह पंथ, सम्प्रदाय, संस्था या दल नहीं है; वह समाज का एक विभाग नहीं है। समाज के अंतर्गत एक संघटन खड़ा करना संघ का प्रयास नहीं है वरन् सम्पूर्ण समाज को ही संघटित अवस्था में लाना उसका प्रयास है। इसलिए संघ और समाज समव्याप्त है। संघ का दायरा उतना ही विस्तृत है जितना समाज का। संघ अर्थात् समाज। परन्तु आज अन्तर दिखता है। आज हिन्दूसमाज अपनी आदर्श अवस्था में नहीं है, वह कुछ विघटित हुआ है। वह सामाजिक, राष्ट्रीय चारित्र्य से गिरा हुआ है। अतः यह आवश्यक है कि यह चारित्र्य पुनः निर्माण किया जाए, विघटन दूर हटाया जाए तथा समाज में संघटन पुनः निर्माण किया जाए इस दृष्टि से प्रयास भी चल रहा है। किन्तु यह प्रयास करनेवाली एक संस्था के नाते संघ नहीं है अपितु वह अर्थात् हिन्दूसमाज है। हाँ, यह बात ठीक है कि जो संघ की संघटन की कल्पना है उस दृष्टि से जो समाज का कुछ संघटित हिस्सा है वह आज संघस्थान पर दिखता है तथा जो इस प्रकार संघटित हिस्सा नहीं है वह संघस्थान के बाहर दिखाई देता है। पर धीरे धीरे जो यह संघ-स्थान पर दिखनेवाली राष्ट्र की प्रतिकृति है (Nation in miniature) उसकी सीमाएँ बढ़ाते बढ़ाते सभी हिन्दुओं को सुसंघटित करना है अर्थात् इस तरह सभी हिन्दू संघ के ही हैं। केवल इतना ही अन्तर है कि कुछ लोग इसकी जानकारी रखते हैं इसलिए संघस्थान पर आते हैं, कुछ जो जानकारी नहीं रखते हैं उन्हें जानकारी होने में कुछ देर हैं अतः वे संघस्थान पर नहीं आते। इसलिए हम कहते हैं कि हमारे कुछ Patent व्यक्त-स्वयंसेवक हैं जो

शाखा पर आते हैं और हमारे कुछ Latent अव्यक्त–स्वयंसेवक हैं जो शाखा पर नहीं आते हैं। यद्यपि वे कभी कभी भूल से बिरोध भी करते हैं तथापि हर एक हिन्दु हमारा स्वयंसेवक है। कुछ actual–प्रत्यक्ष स्वयंसेवक होंगे, कुछ Potential-संभाव्य स्वयंसेवक होंगे तथापि हर एक हिन्दू स्वयंसेवक है। इस बात को वह जानता हो अथवा न जानता हो हमारा कर्त्तव्य है कि हम उसे वह जानकारी दें।

## संघटन का अर्थ

जब हम कहते हैं कि हमें हिंदू समाज का संघटन करना है, तब यह समझना होगा कि संघटन शब्द से हमारा क्या अभिप्राय है? संघ ने संघटन शब्द का विशेष अर्थ में प्रयोग किया है। संघटन से स्वयंसेवक दल यह अर्थ हमें अभिप्रेत नहीं। कई राजनैतिक दल तथा संस्थाएँ अपने स्वयंसेवक दल खड़ा करते हैं। सम्मेलनों तथा समारोहों में ये लोग बैंजेस लगा कर इधर से उधर घूमा करते हैं। उनके कारण व्यवस्था के स्थान पर अव्यवस्था ही निर्माण होती है। हमारी यह धारणा नहीं है कि इस प्रकार के वालंटियरों का जमघट संघटन है। संघटन से हमारा अर्थ है व्यक्ति और समाज के आदर्श सम्बन्ध। वे आदर्श सम्बन्ध कैसे होने चाहिए इस विषय में संघ की एक विशेष धारणा है। हिन्दूसमाज की यह प्राचीनतम धारणा रही है कि जिस प्रकार शरीर और उसके अंग-प्रत्यंग के परस्पर संबंध होते हैं, उसी प्रकार समाज और एक एक व्यक्ति और व्यक्ति समूह के बीच होना चाहिए। मनुष्य के शरीर में विभिन्न अवयव होते हैं तथा प्रत्येक का आकार तथा स्थान भी भिन्न भिन्न होता है। हरएक का कार्य भी भिन्न भिन्न होने से विकास की दिशा भी भिन्न भिन्न है। यह भी सम्भव नहीं है कि सभी अवयव एक ही शरीर के अंग होने से कोई भी अवयव अन्य दूसरे अवयव का काम कर सके। यदि हमने कहा कि सभी समान हैं तो वह कथन आध्यात्मिक स्तर पर सही है परन्तु भौतिक धरातल पर उतर कर यदि उस सिद्धान्त को चरितार्थ करना चाहें और यह कहें कि कान और नाक दोनों समान हैं, अतः कान का विभिन्न राग-रागिनियों का सम्यक् ज्ञान तथा स्वरमालाओं का सूक्ष्मता से परिचय कराने का काम नाक को करना चाहिए, तो संभव है कि हम रेडिओ से नाक सटाकर सौ वर्ष तक भी बैठे रहें तो भी नाक नहीं बता सकेगा कि आसावरी कौनसी है और भैरवी कौनसी है। हरएक अवयव का कार्य भिन्न होता है तथा उसकी विकास की दिशा भी भिन्न होती है। ऐसा होते हुए भी यह बात नहीं है कि अपना शरीर अवयवों का Federation है या Confederation है। इसमें एकात्मता है। आकार, स्थान, कार्य, विकास की दिशा भिन्न भिन्न होते हुए भी एकात्मता है। और सभी अवयव मिलकर एक सजीव इकाई है। जब पैर में चोट लगती है तो

आंखों से आंसू आते हैं। तब आंख यह विचार नहीं करती कि चोट तो पैर में लगी है, मेरा क्या संबंध। यदि मसूड़े में पीड़ा हो तो रात में सारा शरीर ऐसा नहीं सोचता कि मसूडे में पीड़ा है अतः वह अपना देख लेगा मैं तो चैन की नींद सोऊंगा। यदि सिर पर कोई प्रहार करने आता है तो अपने हाथ उसकी रक्षा के लिए कंधों से ऊपर चले जाते हैं। यह इसलिए नहीं होता है कि वैसा भारतीय संविधान में लिखा है या मनुस्मृति में लिखा है। वह तो तत्काल स्वाभाविक रूप से होता है। हाथ यह नहीं सोचता कि जो गड़बड़ हो रही है वह जम्मू काश्मीर में, हम तो मध्यप्रदेश में आराम से बैठे हैं। और जब यहां तक शत्रु आ जाएगा तब देख लेंगे। अवयवों का अलग अलग रूप होना विविधता है भेद नहीं। विविधता के कारण सौंदर्य भी है। यदि ऐसी विविधता नहीं होती और शरीर के सारे अवयव एक से होते तो शरीर बड़ा भद्दा दिखता। विविधता के कारण सौंदर्य भी निर्माण होता है तथा उसमें एकात्मता का रस होता है। जब संघ के विषय में हम विचार करते हैं तब संघ जिस पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग करता है उसे समझना होगा। हर एक विज्ञान की अपनी पारिभाषिक शब्दावली होती है। साधारण मनुष्य जिन शब्दों का प्रयोग करते हैं उनके आधार पर नहीं सोचा जाता। इस दृष्टि से संघ ने कहा है कि संघटन किसी भी जीवमान समाज की स्वाभाविक अवस्था है और यदि वह अवस्था न हो तो इसका अर्थ यही समझना चाहिए कि समाज या तो जीवित नहीं है या वह कम से कम होश में नहीं है।

## संघटन अर्थात् अंगांगी भाव

संघटन से हमारा अभिप्राय अङ्गांगी भाव है। हर एक अङ्ग-प्रत्यङ्ग के मन में यह विश्वास तथा धारणा रहे कि वह सम्पूर्ण शरीर के साथ एकात्म है। इस अनुभूति और साक्षात्कार को संघ ने संघटन संज्ञा दी है। इस तरह का अङ्गांगी भाव अर्थात् संघटन सम्पूर्ण समाज में निर्माण करने का संघ का निश्चय है। अपना समाज विशाल है, तथा इसमें तरह तरह के मतमतान्तर, पंथ-संप्रदाय, परस्पर विरोधी राजनैतिक दल हो सकते हैं। परन्तु सभी पंथों, सम्प्रदायों, राजनैतिक दलों, मतमतान्तरों के साथ हिन्दूसमाज अर्थात् रा. स्व. संघ है। हमने यह कहा है कि रा. स्व. संघ अर्थात् सम्पूर्ण हिन्दूसमाज तथा निःशेष हिन्दूसमाज अर्थात् रा. स्व. संघ है।

## संघ के कार्यक्रम

अब जब यह संघ का स्वरूप दूसरे को बताया जाता है तब कल्पना कीजिए कि वह कैसे इसे समझेगा ? जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं कि जो कुछ देखा है उसी के आधार पर मनुष्य नयी चीज का ग्रहण कर सकता है। ऐसी बात नहीं है, कि लोग संघ को कतई नहीं समझते हैं। परन्तु अपने

अपने ढंग से समझते है । जब वे संघ के स्वयंसेवकों को दण्ड, खड्ग, शूल आदि चलाते हुए देखते हैं तो सोचते हैं कि रा. स्व. संघ एक अखाड़ा या व्यायाम-शाला होनी चाहिए क्योंकि लोगों ने व्यायामशाला देखी है जहां दण्ड, खड्ग, शूल आदि चलाने की शिक्षा दी जाती है । मैं प्रायः दौरे पर रहता हूं तथा अनेक लोगों से मिलता रहता हूँ । संघ के स्वयंसेवक के नाते मुझसे प्रायः लोग संघ के विषय में प्रश्न पूछा करते हैं । उनमें से एक व्यक्ति ने एक बार मुझ से कहा कि आप चार सदियों के पूर्व के युग में रहते हैं, यह एटम बम का युग है और आप संघवाले लाठी चलाते हो ! अब वास्तव में उन्होंने जो देखा है उसके आधार पर उनका प्रश्न सही है । प्रश्नकर्त्ता स्वयं एक राजनीतिज्ञ थे तथा उन्होंने संसद् में ओजस्वी शब्दों में कहा था कि भारत को एटम बम नहीं बनाना चाहिए । परन्तु उन्हें एटम बम के युग में संघ में दी जानेवाली दण्ड की शिक्षा कालबाह्य प्रतीत हुई ! उनकी दृष्टि में एटम बम के युग में लाठी से कुछ नहीं हो सकता है । अब जैसे हम लाठी लेकर ही सब कुछ करने वाले हैं । वैसे तो बंकिमचंद्र ने अपने 'कमलाकान्त' उपन्यास में लाठी के विषय में इस प्रकार कहा है—"हाय लाठि तोमार दिन गियेछे किन्तु सुशिक्षित हाथे पऽडिले तुमि पारो नाय एमन कोई काज नेई ।" (हाय लाठी तुम्हारे दिन अब चले गये हैं किन्तु यदि अच्छे पढ़े लिखे मनुष्य के हाथ में पड़ी तो तू ऐसा कोई काम नहीं जो नहीं कर सकती) । रा. स्व. संघ ने यह कभी नहीं कहा है कि हम एटम बम का सामना लाठी से करेंगे । वैसे इस वाक्य का उच्चारण विश्व के इतिहास में एक बार ही हुआ है । वह वाक्य है, "यदि मौका पड़ा तो एटम बम का मुकाबला हम हाथ में लाठी लेकर करेंगे ।" इस तरह का बहादुरी के वाक्य का उच्चारण एक ही बार हुआ और वह भी लंदन में स्व. पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा । उनके सिवाय किसी ने इस तरह की बात नहीं कही है ।

## कार्यक्रमों का उद्देश्य हृदय पर संस्कार

रा. स्व. संघ में जो दंड, खड्ग, शूल, बौद्धिक, संघगीत आदि कार्यक्रम होते हैं उनका उद्देश्य व्यक्ति-व्यक्ति के हृदय पर संस्कार अंकित करना है । सामूहिक क्रिया द्वारा समष्टिगत संस्कार अंकित होते हैं । इसलिए सामूहिक क्रिया का महत्त्व है । यह बात उनके पल्ले नहीं पड़ती क्योंकि उन्होंने ये सारे विचार सुने ही नहीं हैं; नही कभी ऐसा कोई काम देखा है । उन्होंने देखी है तो केवल व्यायामशाला ! वे कहते हैं कि संघ व्यायामशाला तो है किन्तु बहुत पुराने ढंग की, क्योंकि एटम बम के स्थान पर लाठी का उपयोग कर रहे हैं ।

कुछ लोग यह सोचते हैं कि संघ सैनिक संघटन होना चाहिए । और यहां प्रजातन्त्र का अस्तित्व ही नहीं है । अब वर्तमान समय की विभिन्न संस्थाओं का

आचार-विचार देखकर जिन्हें यह लगा हो कि यह हिटलर का दल है तो मुझे लगता है कि उसमें उनका कोई दोष नहीं। यह ठीक है कि संघ भले ही कहता हो कि हम अनुशासित हैं और उसका वह कथन ठीक भी है परन्तु जहाँ लोगों की धारणा यह बन चुकी है कि प्रजातन्त्र तथा अनुशासन साथ साथ नहीं चल सकते वहां यदि आप इस ढंग से एक कतार में बैठते हों तो उन्हें बड़ा आश्चर्य होगा। अब मुझे विभिन्न स्थानों पर अनेक राजनैतिक दलों के मंच पर उपस्थित होने का अवसर मिलता है। वहां के वातावरण का मुझ पर भी इस तरह का असर होकर मुझे भी लगने लगा कि संघ में कुछ गड़बड़ है– डिक्टेटरशिप अवश्य है। राजनैतिक दलों के कार्यक्रमों का वातावरण बड़ा डेमॉक्रेटिक रहता है। कोई सिगरेट पीता है, मंच पर तकिये के सहारे बैठने के लिए धक्का बुक्की होती है, लोग आते-जाते रहते हैं, इधर माईक पर नेता का भाषण होता है, उधर मंच पर अन्य नेतागण चायपान करते हैं। अब जिसको इस वायुमण्डल का अभ्यास हो गया हो वह जब संघ में लोगों को एक कतार में बैठे हुए देखता है तो वह कहेगा ही कि यह हिटलरशाही है। जब संघ पर प्रतिबंध लगा था तब बंगाल के बैराकपुर नामक स्थान के वॉलीबाल क्लब के ५–६ पदाधिकारियों को इसलिए गिरफ्तार किया गया था कि वे निर्विरोध चुन लिये गये थे। मैं उन दिनों बंगाल में था और यह समाचार विदित होते ही मैं वहां गया और वहां के सर्किल इन्स्पेक्टर से उन पकड़े गये व्यक्तियों के बारे में पूछताछ की। इन्सपेक्टर ने कहा कि वे लोग संघ की शाखा लगाने के अपराध में पकड़े गये हैं। मैंने उनसे कहा कि जब से संघ पर पाबंदी लगी हुई है तब से बैराकपुर में कोई संघ की शाखा नहीं चल रही है, फिर आपने इन लोगो को कैसे गिरफ्तार कर लिया ? उन्होंने कहा कि इनके द्वारा चलाये गये वॉली-बॉल क्लब के ४० सदस्य होते हुए भी अध्यक्ष, मंत्री, कोषाध्यक्ष आदि के चुनाव बिना मारपीट किए एकमत से हुए यह एक ही बात इनका रा. स्व. संघ का स्वयंसेवक होना प्रमाणित करती है। अर्थ यह है कि जिसको जैसा लगता है, अनुभव होता है वह उसके आधार पर संघ की धारणा कर लेता है। पूना में मेरे एक परिचित राजनैतिक वयोवृद्ध नेता हैं। जब जब मैं पूना जाता था तब तब मैं उनके दर्शन किये विना पूना नहीं छोडता था। वे मुझे हमेशा घर की देहली के बाहर से ही विना चाय पिलाये बिदा करते थे। परन्तु पूना के 'पान शेत काण्ड' के उपरान्त जब मैं पूना गया और उनसे मिलने गया तो उन्होंने मेरी बड़ी आवभगत की, चाय पिलाई। मुझे उनके व्यवहार से बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर जब उनको स्वयं संघ के विषय में बात छेड़ते हुए देखा तो मैं और भी आश्चर्यचकित हो गया, क्योंकि वे संघ के कट्टर दुश्मन थे। उन्होंने मुझ से कहा कि डॉक्टर हेडगेवारजी बड़े दूरदर्शी थे। क्योंकि उन्होंने यह सोचकर कि १९६१ में पूना में बड़ी बाढ़ आएगी १९२५ में ही नागपुर में एक स्थायी सहा-

यता समिति का निर्माण किया। उस समिति के स्वयंसेवकों ने पानशेत की बाढ़ में लोगों के प्राण बचाये, उनके कारण ही मेरे भी प्राण बच पाये। मैंने मन ही मन कहा कि चलो डॉक्टर हेडगेवार को एक सर्टिफिकेट तो मिल गया। इस तरह जिसको जैसा अनुभव आता है वैसा वह संघ को देखता है। किन्तु संघ का जो वास्तविक स्वरूप है वैसा वे नहीं देख पाते। वे संस्था, सम्प्रदाय, सैनिक संगठन, समझ सकते हैं परन्तु वे यह नहीं समझ सकते कि संघ अर्थात् सम्पूर्ण हिन्दूसमाज है। इसका कारण इस प्रकार का संगठन निर्माण करने का प्रयास इससे पूर्व नहीं हुआ है; जो हुआ नहीं उसको समझना कठिन है। इसीलिए मैंने कहा कि भाषाशास्त्र में जितने अलंकार हैं उनका अर्थ यह है कि परिचित वस्तु के आधार पर अनोखी वस्तु का ज्ञान कराना। किन्तु भाषाशास्त्र में और भी एक अलंकार है जिसका नाम 'अनन्वय' है। उसका उदाहरण साहित्यशास्त्र में इस प्रकार दिया गया है:—

**गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः।**
**रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ॥**

इसका अर्थ है आकाश आकाश के समान है, महासागर महासागर के समान है तथा राम-रावण युद्ध की समानता राम-रावण युद्ध से ही हो सकती है। इसी प्रकार जब कहा जाता है कि संघ संघ के जैसा है तो बाहरी व्यक्ति क्या समझेगा ? वह नहीं समझ सकता। इसलिए मैं ऐसा समझता हूं कि 'संघ' एक 'अनन्वय' अलंकार होने के कारण बाहर के लोग सद्हेतु, सद्भावना से भी समझने का प्रयत्न करेंगे तो भी पर्याप्त समय लगेगा और मैं अनुभव करता हूँ कि जब तक संघ के साथ प्रत्यक्ष परिचय नहीं होता तब तक संघ समझने में कठिनाई रहेगी।

मैंने स्वयं इस बात का अपने जीवन में अनुभव किया है। तब मैं मॉरिस कॉलेज में पढ़ता था। मैं और मेरे अन्य साथी अपने आपको बहुत ही प्रगतिशील विचारों के समझते थे। कुछ मित्रों को लाठी लेकर संघ में जाते हुए देखकर हम लोगों को उन पर दया आती थी। परन्तु कुछ स्वयंसेवक मुझे संघ में ले जाने के लिए मेरे पीछे पड़ गये। संघ ने सिखाया है कि समाज पर आक्रमक प्रेम करो ? अर्थात् मान न मान मैं तेरा मेहमान। मेरे स्वयं सेवक बंधु मुझे भरसक संघ समझाने का प्रयास करते थे और उनकी बात मेरी समझ में नहीं आती थी। यह बात कि "संघ का उद्देश्य मनुष्य का निर्माण करना है," मेरी समझ के परे थी। अब यह संघ की परिभाषा है—उसका अपना विशिष्ट अर्थ है। वह न समझने से अनर्थ भी हो सकता है। ईसा मसीह ने कहा है कि "The letter killeth" शब्दों के कारण हत्या भी हो सकती है। जब हम मनुष्य हैं तो मनुष्य का निर्माण करना निरर्थक लगा। परन्तु उन्हीं दिनों हमारे कॉलेज की पत्रिका में प्रकाशित एक कविता देखने को मुझे मिली जो इस प्रकार थी:—

Wanted men !
Not systems, fit and wise !
Not faith, with rigid eyes !
Not wealth, in mountain piles !
Not power, with gracious smiles
Not even the potent pen.
Wanted Men !

इस कविता को पढ़ने के बाद संघ की मनुष्यनिर्माण की बात का भी स्मरण हो आया । इसके बाद एक और रोचक प्रसंग पढ़ने को मिला । ग्रीस के सर्वश्रेष्ठ विचारक डायजेनिस एक बार भरी दुपहरी में हाथ में लालटेन लेकर अथेन्स के भरे बाजार में आए । लोगों के पूछने पर उन्होंने कहा कि मैं मनुष्य को ढूंढ़ रहा हूं" । लोग बड़े अचम्भे में पड़ गये । उन्होंने कहा कि हम सारे मनुष्य ही तो हैं, फिर, उनकी खोज क्यों करते हो ? डायजेनिस बहुत ही क्रोधित हो गये । और आवेश में कहा "हट जाओ, मुझे मनुष्य चाहिए, बौने नहीं (Get out, Iwanted men, not pygmies)! संघ वाले भी मनुष्य चाहिए कहते हैं, इधर कवि और डायजेनियस भी वही बात कहते हैं, अवश्य इसमें कुछ अर्थ होगा । उन्हीं दिनों स्वामी विवेकानन्द के चित्र के नीचे एक वाक्य पढ़ने को मिला जो इस प्रकार था–"I want men with capital 'M' ! तब समझ में आया कि मनुष्यनिर्माण भी कोई प्रक्रिया है । केवल दो हाथ, दो पैर होने से मनुष्य बनता नहीं है तो वैसे मनुष्य बनाने के लिए कुछ करना पड़ता है । तब संघ के प्रति आस्था बढ़ी और फिर ज्ञात हुआ कि मनुष्य बनाने के लिए कुछ संस्कार आवश्यक हैं ।

अब यह बताना कठिन है कि संघ में कितने दिन तक जाने से कितने संस्कार होंगे । इसका कोई गणनयंत्र तो नहीं है । संस्कारों की प्रगति इतनी सूक्ष्म होती है, कि उसे ग्रहण करनेवाले को भी उसका ज्ञान नहीं हो पाता है । उन्हें वह अनजाने ग्रहण करता रहता है । नवजात शिशु हर क्षण बढ़ता रहता है, परन्तु माता के लिए यह बताना कठिन है कि चौबीस घंटे के भीतर वह कितना बढ़ा होगा । हां, उसी बालक को दस वर्ष के पश्चात् देखने पर यह बताना सरल होता है कि वह कितना बढ़ा है । उसी प्रकार संस्कारों की प्रगति होती रहती है और कठिन परीक्षा के समय ही संस्कारयुक्त और संस्कार विहीन व्यक्ति की पहिचान होती है । एक सुभाषित है ।

**काकः कृष्णः पिकः कृष्णः को भेदः पिककाकयोः ।**
**वसंतसमये प्राप्ते काकः काकः पिकः पिकः ॥**

वसंत ऋतु में कोयल और कौवा पहिचाने जाते हैं ।

## परीक्षा के समय राष्ट्रभक्ति की कसौटी

वैसे संघ में आनेवाले और संघ में न आने वाले दोनों में क्या अंतर है ? परन्तु जब परीक्षा का समय आता है तब संस्कारों का प्रभाव दिखाई देता है। बहुत अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है। संघ के स्वयंसेवकों ने समाज के घटक के नाते कई काम किये हैं। संघ संघ के नाते काम नहीं करता है क्योंकि संघ कोई संस्था नहीं है परन्तु समाज के घटक के नाते स्वयंसेवकों ने कई काम किए हैं। यहाँ एक छोटासा उदाहरण पर्याप्त होगा। १९६५ में जब भारत पर पाकिस्तान का आक्रमण हुआ था तब भारत–पाक सीमा पर स्थित फाजिल्का शहर में सरकार ने 'नागरिक सुरक्षा' का कार्यक्रम प्रारंभ किया। वहाँ के प्रमुख राजनैतिक दल के जिलाध्यक्ष को नागरिक सुरक्षा समिति का अध्यक्ष चुना गया। कुछ समय बाद जब एक मंत्रीमहोदय वहां निरीक्षण के लिए आए तब संबंधित राजनैतिक दल के लोगों ने उनसे शिकायत की कि जिलाधीश का आचरण बहुत ही पक्षपातपूर्ण है क्योंकि वे संघवालों को ही नागरिक सुरक्षा में भर्ती होने के लिए बढावा दे रहे हैं, संघ वाले ही वहाँ भर्ती हो रहे हैं और शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। हमारे दल के लोगो को निमंत्रित नहीं किया जाता। तब मंत्रीमहोदय क्रोध से आगबबूला हो गये और उन्होंने तुरन्त जिलाधीश को अपने सामने उपस्थित होने का आदेश दिया। जिलाधीश के आते ही मंत्रीमहोदय बरस पड़े, "क्या तुम पागल हो ? अरे, ठीक है कि राष्ट्र पर आक्रमण हुआ है। राष्ट्र तो बच ही जाएगा। जो होगा सो देखा जाएगा, परन्तु पहले अपने दल का हित तो देखना चाहिए। हमारे दल के लोगों को अगुआपन क्यों नहीं देते ?" तब जिलाधीश ने विनम्रता से कहा, मान्यवर ! मंत्रीमहोदय जी ऐसी बात तो नहीं है। आपकी पार्टी के जो जिलाधीश हैं उनको ही मैंने समिति का सर्वेसर्वा बनाया है। परन्तु जब दूसरे दिन से शिक्षा देने का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ तब संघ वाले निकर पहनकर बिल्कुल निष्ठापूर्वक वहां आने लगे और शिक्षा–दीक्षा लेने लगे। अब मैं क्या करूँ कि आपके जिलाध्यक्ष आए भी नहीं। तब मंत्रीमहोदय ने कहा कि आपका काम था कि उन्हें बुलाने जाते। उत्तर में जिलाधीश ने कहा कि जब मैं उनके बंगले पर चौथे दिन पहुंचा तब जिलाध्यक्ष ने उत्तर दिया कि जिलाधीशजी! आप मुझे पागल मत समझिए। मैं इन संघवालों के समान आवारा नहीं हूं। उन्हें रोज आने को क्या होता है। न आगा न पीछा। मैं तो बालबच्चेवाला गृहस्थ हूं। मेरे तो नन्हे नन्हे बच्चे हैं।" अब उनका सब से छोटा लड़का एम्.एस्.सी. पढ़ रहा था! तो परीक्षा के समय इस बात का पता चलता है कि संस्कारित हृदय और असंस्कारित हृदय कौनसा है।

## एक घंटे के कार्यक्रम

कई लोग पूछते हैं कि "भाई ! हम संघ स्थान पर आकर क्या करें ?

एक घंटा हमारा व्यर्थ खर्च होता है। क्योंकि वहाँ आप ऐसा कौनसा बड़ा काम करते हैं ? कहीं गीत गाते हो, कहीं थोड़ी लाठी चला लेते हो, कहीं कबड्डी खेलते हो। ये तो बहुत ही साधारण बाते हैं। इनसे क्या होगा ? परन्तु मनुष्य की परिपूर्णता में छोटी बातों का भी वड़ा योगदान होता है। एक बार योरोप के एक बड़े चित्रकार मायकेल एंजलो ने एक उत्तम चित्र बनाया और एक साहब को दिखाया। चित्र देखने पर उक्त सज्जन ने उसकी भूरि भूरि प्रशंसा की। तब माइकेल एंजलो ने उनसे कहा कि "मैं इस चित्र में और भी सुधार करनेवाला हूं।" छः महीने के बाद वे सज्जन चित्र देखने पुनः पधारे। माइकेल ने जो चित्र में सूक्ष्म सुधार किये थे वे उन्हें समझाये। तब उक्त सज्जन कह उठे यह तो साधारण सा परिवर्तन किया गया है उनसे क्या अंतर पड़नेवाला है। मुझे तो पहिले जैसा ही लगता है। माइकेल उक्त कथन पर बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने कहा कि "All right sir ! they are trifles but nevertheless all these trifles put together make perfection and perfection is net trifle." जो छोटी छोटी बातें हैं लोग उनको ठीक नहीं समझते। वे कहते हैं कि चीन, पाकिस्तान की बात करना राष्ट्रभक्ति है, कबड्डी खेलने से क्या होगा ? परन्तु यह सोचना मूल है। सामूहिक क्रियाओं द्वारा सामूहिकता के संस्कार होते हैं। और इस-लिए वे छोटी छोटी बातें संघस्थान पर होती हैं। उनका अपना महत्त्व है। सन् १९४६ में एक बार कलकत्ता के निवासकाल के समय प. पू. गुरुजी के साथ मेडिकल कॉलेज के प्राध्यापकों के चायपान के आयोजित किये गये कार्य-क्रम के समय एक प्राध्यापक ने कहा था कि "हमें आपका संघ वड़ा अच्छा लगता हैं, यहाँ संस्कार आदि होते हैं। यह सब ठीक है, किन्तु एक बात हम समझ नहीं पाते हैं कि कबड्डी, दंड, खड्ग आदि के द्वारा यह राष्ट्रनिर्माण का कार्य कैसे हो सकेगा ? क्योंकि ये सारे कार्यक्रम वड़े ही तुच्छ हैं। प. पू. श्री गुरुजी ने कहा कि "आप लोग तो चिकित्सा विज्ञान के ज्ञाता हैं अतः मैं भी आप लोगों से एक प्रश्न पूछना चाहता हूं। पेनिसिलिन औषधि कैसे निर्माण की जाती है ?" उत्तर प्राप्त होने पर श्री गुरुजी ने कहा कि जिस प्रकार बासी अन्न पर जमा हुई फफूंदी जैसी तुच्छ वनस्पति पर प्रक्रिया कर वह औषधि जो कि औषधियों का राजा मानी गयी (Master drug) हैं निर्माण हो गई है तो क्या इसका अर्थ यह नहीं है कि विशेषज्ञ के हाथों में पड़ने पर क्षुद्र से क्षुद्र वस्तु से भी उत्तम फल की प्राप्ति होती है। इस दृष्टि से हम भी संगठन-शास्त्र के विशेषज्ञ हैं।

## संस्कार द्वारा मनुष्य निर्माण

लोग समझते हैं कि रेडियो पर प्रभावी भाषण आ जाने या समाचार पत्रों में छप जाने से उनका मन पर प्रभाव पड़ता है। परन्तु लेखों या भाषणों

से मन पर संस्कार नहीं होते हैं। यदि मन पर संस्कार करना है तो प्रति दिन एक पवित्र वायुमंडल में मन को रखने की आवश्यकता हुआ करती है। इस दृष्टि से संघ ने एक अपनी कार्यपद्धति का विकास किया है। किन्तु जिनको पता नहीं है उनसे यदि यह कहा जाए कि कबड्डी खेलते खेलते हम राष्ट्र का निर्माण करेंगे तो वे कहेंगे कि यह तो निरा पागलपन है। इसलिए यदि लोग इसे समझते नहीं हैं तो मैं समझता हूं कि उनको दोष देना कुछ ठीक नहीं है। संस्कार करना संघ का कार्य है। प्रति दिन की उपस्थिति संघ की कार्यपद्धति का केन्द्रबिन्दु है। उसके माध्यम से हर एक व्यक्ति को सुसंस्कारित करना, इन सुसंस्कारित व्यक्तियों के बीच संघटन निर्माण करना अर्थात् राष्ट्र के विषय मे एकात्मता का भाव पैदा करना, इस एकात्मता के कारण सम्पूर्ण समाज के साथ अनुशासनबद्ध होकर चल सके ऐसी परिस्थिति निर्माण करना तथा इस प्रकार एक अनुशासनबद्ध, राष्ट्रीय एकात्मता के भाव से युक्त राष्ट्रपुरुष निर्माण करना, संघ का कार्य है। किन्तु संघ की कार्यपद्धति ऐसी है कि वह लोगों के समझ में नहीं आती। मैं पहिले ही कह चुका हूं कि संघ की शब्दरचना ही ऐसी है कि वह लोगों के समझ में नहीं आती। बाहरी लोगों के द्वारा संघटन को स्वयं-सेवकदल समझा जाता है जब कि संघ की परिभाषा में उसका अर्थ है अङ्गांगीभाव। मनुष्य निर्माण का गलत अर्थ किया जाता है। संघ की कुछ विशेषताएँ ऐसी हैं कि नया व्यक्ति उसे समझ नहीं पाता।

## सेक्युलर का सही अर्थ

आजकल संघ के विषय में बड़ा वादविवाद चल रहा है। वैसे यह बात संघ के लिए उपकारक सिद्ध हो रही है। क्योंकि पहले तो लोग इतने उदासीन थे कि संघ के बारे में जानना ही नहीं चाहते थे। अब जबकि प्रतिदिन समाचार पत्रों में कुछ ना कुछ विवादास्पद बातें छपने लगी हैं तो लोग सोचने लग गये हैं। फलस्वरूप जिज्ञासावश संघ में आने लगे हैं संघ समझ लेने के कारण वे संघ में सम्मिलित भी हो जाते हैं। इन दिनों में शाखाओं के स्वयंसेवकों की संख्या भी बढी है। ऐसे भी व्यक्ति संघ के स्वयंसेवक बन गये हैं, जिनके साथ संभव है कि संघ के स्वयंसेवक स्वाभाविक परिस्थिति में सम्पर्क नहीं स्थापित कर पाते, परन्तु विरोधियों की कृपा से उन्हें संघ के अंतर्गत ला दिया गया है। परन्तु उन्होंने संघ को समझ लिया अतः वे संघ के साथ एकात्म हो गये। इस तरह आजकल संघ के संबंध में प्रारंभ हुए विवाद के कारण संघ का लाभ हुआ है। संघ के सिद्धान्त तथा आदर्श जानने के बारे में लोगों में जिज्ञासा निर्माण हो गयी है। राष्ट्र क्या है, राष्ट्रीयत्व क्या है आदि के बारे में लोगों के मन में जो उत्सुकता निर्माण हुई है वह विरोधी प्रचार के कारण ही। वैसे संघ तो किसी का विरोधी नहीं है क्योंकि संघ तो

सम्पूर्ण समाज है। अतः हम किसका विरोध करेंगे ? हां, यह हो सकता है कि समाज के ही कुछ अंश हमारा विरोध करें। यह बड़ी अच्छी बात है कि संघ के मौलिक सिद्धान्तों के विषय में विवाद निर्माण हुआ है। क्योंकि इसके कारण हमें संघ के मौलिक सिद्धान्त क्या है बताने का अवसर मिल गया।

संघ के विरुद्ध यह आरोप लगाया जा रहा है कि वह साम्प्रदायिक है; निधार्मिक नहीं है। अब हिन्दुस्थान के राजनीतिज्ञ 'Secular' शब्द का जो अर्थ लेते हैं वह अंग्रेजी भाषा के किसी भी शब्दकोष में नहीं मिलता। Secular का यही अर्थ है जो धार्मिक या आध्यात्मिक नहीं परन्तु क्षणभंगुर (Temporal) है"। जिस अर्थ में हमारे राजनीतिज्ञ Secular शब्द को समझते हैं उनके लिए तो Jurisdictional या Non-denominational state जैसे शब्दों का व्यवहार होना चाहिए। अब उस शब्द से दूसरा अर्थ लिया जा रहा है। वैसे शब्दों के अर्थों में परिवर्तन होता ही रहता है। जैसे पहले Natorious शब्द का अर्थ famous होता था परन्तु अब इसके विपरीत अर्थ होता है।

## योरोप में प्रतिक्रियावादी राष्ट्रवाद

साम्प्रदायिक शब्द से सूचित किया जाता है कि अमुक राष्ट्रवादी नहीं है, राष्ट्रविरोधी है। अब इस विवाद से एक लाभ यह हुआ है कि राष्ट्रीयता को कुछ सम्मान प्राप्त हुआ है। क्योंकि जो संघ को गालीं देनेवाले लोग हैं, वे हमेशा अंतरिक्ष में घूमनेवाले होते हैं। धरती पर उनके पैर कभी नहीं लगते। वे कहीं आन्तर्राष्ट्रीयता की बात कहेंगे तो कहीं आन्तरग्रहीय एकता की बात कहेंगे। परन्तु कभी हिन्दुस्थान की बात नहीं करते। उनका कहना है कि राष्ट्रीयता एक संकुचित भावना है। वास्तव में ऐसी बात नहीं है। राष्ट्रीयता का, आन्तर्राष्ट्रीयता या आन्तरग्रहीय एकता के साथ कोई विरोध नहीं है। परन्तु वह माना जाता है। क्योंकि पाश्चिमात्य देशों में वैसा समझा जाता है। लोग यह नहीं समझते हैं कि राष्ट्रीयता और आन्तर्राष्ट्रीयता का आपस में कोई मौलिक विरोध नहीं है। हिन्दुस्थान में तो बिल्कुल नहीं है। अवश्य योरोप में यह भेद माना गया है। उनका जो विकासक्रम है उसके कारण ही राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता परस्पर विरोधी माने गये। क्योंकि योरोप में राष्ट्रीयता का निर्माण और बलवान होना एक प्रतिक्रिया के रूप में हुआ है। योरोप का जो राष्ट्रवाद है वह ३००-४०० वर्ष का है अर्थात् वह शैशवावस्था में है। हिन्दुस्थान का राष्ट्रवाद इतना प्राचीन है कि इतिहास ने जब कभी अपनी आँखें खोली होंगी उसने हमें राष्ट्र के रूप में ही देखा होगा। योरोप के विकासक्रम का इतिहास देखने से ज्ञात होता है कि वहां पहले पोप का अधिराज्य पूरे ईसाई-जगत् पर था परन्तु बाद में धीरे-धीरे अपने-अपने पृथक् राष्ट्र का विचार बल

पकड़ता गया। इंग्लैंड ने आठवे हेन्री के समय पोप के हस्तक्षेप को अस्वीकार कर दिया। पोप तथा स्पॅनिश आर्मिडा के विरोध में इंग्लैंड का राष्ट्रवाद प्रखर हो उठा। नेपोलियन के आक्रमणों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप तेरह विभिन्न राज्यों मे बँटे हुए जर्मन लोगों का राष्ट्रवाद प्रबल हुआ। आस्ट्रियाई साम्राज्यवाद के आक्रमण के फलस्वरूप विभिन्न राज्यों में विभक्त हुए इटाली में राष्ट्रीयता का भाव प्रखर हुआ। इस प्रकार योरोप में प्रतिक्रिया के रूप में ही राष्ट्रवाद प्रखर हुआ। इसके कारण वहां के लोगों की धारणा बन गयी है कि राष्ट्रों राष्ट्रों के बीच विरोध है। इसके कारण जब राष्ट्रवाद से हानि होने लगी तब आन्तर्राष्ट्रीयता की बात चल पड़ी। मार्क्स और लेनिन ने कहा कि राष्ट्रवाद को समाप्त किया जाय। परन्तु जब प्रथम महायुद्ध में विभिन्न देशों के कम्युनिस्ट लोगों ने भी अपने अपने देश के साथ गद्दारी नहीं की तो लेनिन को बहुत दुःख हुआ। योरोप के विकासक्रम की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के कारण ही वहां यह भावना है कि राष्ट्रीयता और आन्तर्राष्ट्रीयता के बीच घोर विरोध है।

## कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

भारत में राष्ट्रीयता का ऐतिहासिक विकासक्रम सर्वथा भिन्न है। एक तो हमें इस बात का पता नहीं है कि हमारा राष्ट्रीयत्व कब प्रारंभ हुआ। जब कभी इतिहास ने अपनी आंखे खोली तब उसने यह देखा कि हिन्दू-राष्ट्रीयत्व विश्वसंस्कृति के लिए एक base of operation के नाते काम कर रहा है। विश्व में एक सुसंस्कृत राष्ट्र के नाते हमारा देश विद्यमान था और हमारे पूर्वजों के मन में यह विचार कदापि नहीं था कि हम शेष विश्व के लोगों का शोषण करेंगे। उन्होंने यह सोचा था कि हम जैसे सुसंस्कृत हैं वैसा सारे लोगों को भी बनाएँगे। हमारा जो स्तर है उस पर सारे विश्व को लाएँगे। उनकी घोषणा थी कि "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"। आर्य शब्द गुणवाचक है, वंशवाचक नहीं है। इस प्रकार हमनें लोगों का सांस्कृतिक स्तर ऊंचा उठाने का विचार किया। अतएव "Hindu Nationalisum was the base of operation for world civilization, for world culture."

## योरोप में ढाँचेबंद विचार

योरोप की राष्ट्रीयता एक और बात में भिन्न है। उनके विकासक्रम के कारण वहां के लोगों के विचार बहुत ही compartmentalised 'ढाँचेबंद' है। वे सोचते हैं कि जो विभिन्न सामाजिक संघटन हैं उनमें परस्पर विरोध है। इसलिए वहां जितने सारे विचार होते हैं वे विरोध पर आधारित होते हैं। वहां व्यक्ति, परिवार, राष्ट्र, मानवता, विश्व आदि इकाईयों के बीच विरोध पाया जाता है। इसलिए वहां अधिकारक्षेत्र का (Jurisdiction) प्रश्न सदा उपस्थित होता है। व्यक्ति और परिवार, व्यक्ति और समाज, राष्ट्र और

मानवता के संबंधों में प्रत्येक का अधिकारक्षेत्र क्या हो, इसका विचार होता है। इसके कारण ही वहां अनेक 'वाद' तथा उनपर आधारित समाजरचनाएँ प्रचलित हुई हैं। जिस प्रणाली में व्यक्ति का दायरा बड़ा और समाज तथा राज्य का दायरा छोटा होता है वह प्रजातंत्र; जिसमें समाज और राज्य का दायरा सर्वकंष होता है वह अधिनायक तंत्र या कम्युनिज्म कहलाता है। कम्युनिज्म में व्यक्ति को राज्ययंत्र का केवल निर्जीव पुर्जा माना जाता है (cog and wheel; nut and bolt of the state machinery) योरोप में व्यक्ति का दायरा और समाज तथा राज्य का दायरा दोंनों में खींचातानी चल रही है।

## व्यष्टि-समष्टि-परमेष्ठी में एकात्मता

हिन्दुस्थान का ऐतिहासिक विकासक्रम भिन्न प्रकार का रहा है। हमारे मनीषियों–ऋषि-मुनियों ने साक्षात्कार किया था कि व्यक्ति–परिवार, व्यक्ति–समाज, राज्य–आन्तरराष्ट्रीयता में विरोध नहीं है, वरन् ये उत्तरोत्तर विकास की कड़ियां हैं। जिस प्रकार बीज, अंकुर, पौधा, शाखाएं, पल्लव. फूल–फल नैसर्गिक विकास की अवस्थाएं हैं, उसी प्रकार व्यक्ति से लेकर मानवतावाद तक परस्परपूरक तथा पोषक विकासक्रम की अवस्थाएं हैं। इसलिए हमारे यहां यह वस्तुतः माना गया है कि (objectively) व्यक्ति से लेकर परमेष्ठी तक जितनी भी सामाजिक इकाईयां हैं वे एक विकासक्रम मात्र हैं। तथा तत्त्वतः यह माना गया है कि जैसे जैसे व्यक्ति की चेतना का (Consciousness) का विकास होता जाता है वैसे वैसे वह चेतन जगत के साथ स्वयं अपने को एकात्म समझता है। छोटा बच्चा प्रारंभ में अपना ही विचार करता है परन्तु धीरे धीरे माता, पिता, भाई, बहन तथा संपूर्ण परिवार के साथ एकात्म हो जाता है। और बड़ा होने पर समाज, राष्ट्र के साथ एकात्म होता है। जब उसे आत्मज्ञान होता है तब वह संन्यास ग्रहण कर तीनों लोकों को स्वदेश 'स्वदेशो भुवनत्रयम्' मानता है। संक्षेप में हमारे यहां यह धारणा है कि व्यक्ति का परिवार, राष्ट्र या विश्वबंधुता के साथ कोई विरोध नहीं है। वरन् उत्तरोत्तर आत्मचेतना के विकास की नैसर्गिक अवस्थाएं हैं। इस दृष्टि से वस्तुतः सामाजिकता (Social organism) तथा तत्त्वतः मनुष्य की आत्मचेतना का विकास हमारे यहां जीवन का लक्ष्य माना गया है। हमारे यहां समाजव्यवस्था की यह पद्धति रही है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी पद्धति से अपना अपना विकास करे, अपने अपने गुणकर्म के आधार पर अपना जीवनक्रम निश्चित करे। प्रत्येक को अपने विकास की स्वतंत्रता रहे, सभी व्यक्ति और व्यक्तिसमूह के मन में सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रति एकात्मता का भाव रहे तथा वह अपने अपने विकास का जो फल है वह राष्ट्रदेवता के चरणों पर समर्पित करने के लिए सिद्ध रहे। इस प्रकार व्यक्ति तथा व्यक्तिसमूह का

सम्पूर्ण विकास तथा राष्ट्र की एकात्मता दोनों का समन्वय किया गया है। इस व्यवस्था में व्यक्ति–समूह के विकास के लिए पूरी स्वतंत्रता है। व्यक्ति और राष्ट्र के परस्पर सम्बन्धों में एक लचीला अनुशासन हमारी विशेषता रही है। इस लचीले अनुशासन के कारण व्यक्ति से लेकर परमेष्ठी तक जो सारे सामाजिक घटक (Social organisms) हैं वे अपने अपने स्थान पर ठीक ढंग से कार्य करते हैं।

## नेताओं को राष्ट्रीयता का साक्षात्कार

अब हिन्दुओं के संबंध में ये सारी बातें जानना आजकल बहुत प्रतिक्रियावादी माना जाता है। यदि आप जो भी हिन्दु-विचार हैं उन्हें जानने की चेष्टा करेंगे तो आपको घोर प्रतिक्रियावादी कहा जाएगा। इसलिए इस विषय के संबंध में अपने यहां के नेताओं में अज्ञान पाया जाता है। उन्होंने सुन रखा है कि योरोप में राष्ट्रीयता का और आन्तर्राष्ट्रीयता का मेल नहीं है। इसके आधार पर वे राष्ट्रीयता को कोसते हुए आन्तर्राष्ट्रीयता के अंतरिक्ष में विचरण करते रहे। अब संघ को गाली देने के निमित्त ही क्यों न हो वाध्य होकर उनको आसमान से जमीन पर आना पड़ा है। वे कहने लगे हैं कि राष्ट्रीयता का भी अस्तित्व है, वह एक आदरणीय तथ्य है। यह एक बड़ा भारी लाभ मानना पड़ेगा।

## दांभिकता !

विरोधियों द्वारा संघ को गाली देने के प्रयत्नों में एक दूसरा भी लाभ हुआ है। हमारे यहाँ राजनैतिक रचना ऐसी है कि जो जितनी अधिक विभेद की बातें करेगा उसको उतना लाभ तुरन्त हो सकता है। जो छोटी इकाई का अभिमान लेकर काम करेगा वह तुरन्त कहीं ना कहीं चुनकर आ सकता है। फलस्वरूप प्रादेशिकता, भाषिकता जैसे विघटनकारी विवाद बढ़ रहे हैं। अब ये ही विघटनकारी प्रवृत्तियों से ग्रस्त सारे नेतागण मौखिक सहानुभूति दिखाने तथा लोगों के दिखावे के लिए ही क्यों न हो, राष्ट्रीयता का नाम ले रहे हैं। हृदय से तो ये लोग जातीय, प्रादेशिक, सांप्रदायिक, प्रादेशिक भाषाभिमानी हैं, केवल नाम के लिए राष्ट्रीयता का नाम लेते हैं। परन्तु उनकी दांभिकता भी एक दृष्टि से उपकारक ही कही जाएगी। अंग्रेजी में एक सुभाषित है— "Hypocracy is a tribute paid by vice to virtue." इससे राष्ट्र, राष्ट्रीयता समझने और समझाने का अवसर हमें प्राप्त हुआ है।

## हिन्दू शब्द का अर्थ

राष्ट्र के विषय में हमारा और उनका जो मतभेद है वह बहुत पुराना है। १९२५ में संघ के संस्थापक डा. हेडगेवारजी को इस विषय में बड़े आग्रह से कहना पड़ा था कि यह हिन्दू-राष्ट्र है। उस समय भी बड़े विवाद खड़े हुये

थे । अब हिन्दू शब्द का अर्थ क्या है यह बात सर्वप्रथम समझने की आवश्यकता है । कुछ दिन पूर्व एक विदेशी पत्रकार ने संघ के विषय में जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से मुझ से कहा कि "आप लोग जो हिन्दू रिलिजन लेकर चल रहे हैं.....।" मैंने उन्हें बीच में ही टोकते हुए कहा कि चर्चा करने के पूर्व आप यह बताइये कि हिन्दू रिलिजन क्या है ? और हिन्दू रिलिजन नाम का कौनसा रिलिजन है ? पत्रकार ने कहा कि वे विदेशी हैं अतः उन्हें ये सारी बातें विदित नहीं हैं । तब मैंने कहा कि रिलिजन की परिभाषा है "Religion is relationship between a man and his maker" अब इस बनानेवाले को कोई अल्लाह कहे, कोई भगवान् कहे, कोई जव्होवा कहे या स्वर्ग में रहनेवाला पिता कहे, किसी भी नाम से संबोधित करे, परन्तु 'रिलिजन' मनुष्य और भगवान् के बीच सम्बन्ध है । अतः 'रिलिजन' सर्वथा व्यक्तिगत बात है । हिन्दुओं ने सदा ऐसा ही माना है । इसलिए जैसे अन्य देशों में यह धारणा है कि सबका 'रिलिजन' एक होना चाहिए, हमारे यहां इसे अशास्त्रीय माना गया है । हमारे यहाँ तो यह कहा कहा गया है कि सब का एक रिलिजन नहीं हो सकता । यदि रिलिजन व्यक्ति और भगवान् के बीच सम्बन्ध है, तो प्रवृत्ति, रुचि, प्रकृति तथा शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक, आध्यात्मिक स्तर की विभिन्नता के कारण व्यक्ति-व्यक्ति में भिन्नता होने से सबका एक ही रिलिजन कैसे हो सकता है ? इसलिए हमारे यहाँ सब के लिए एक किताब, एक मसीहा, एक रास्ता, एक अल्लाह, एक 'डायलेक्टिज्म्' नहीं माना गया है । हमारे यहाँ तो यह माना गया है कि जितनी रुचियाँ और प्रवृत्तियाँ हो सकती हैं उतने ही रास्ते हो सकते हैं । इसलिए हमारे यहाँ उपासना की पूरी स्वतंत्रता है । हिन्दुओं में भिन्न भिन्न प्रकार की उपासना पद्धतियाँ प्रचलित हैं । हमारे यहाँ तो यहाँ तक कहा गया है कि अलग अलग लोगों के लिए अलग अलग रिलिजन होना आवश्यक भी है । यद्यपि सबका गन्तव्य स्थान एक है तथापि दिशाएँ अलग अलग रहेंगी । जैसे कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली और मद्रास में रहनेवाले व्यक्तियों को नागपुर में पहुंचना हो तो प्रत्येक को अलग अलग दिशाओं में जाना होगा, क्योंकि प्रस्थानस्थल भिन्न भिन्न है । सब के लिए एक दिशा बतलाना संभव नहीं है । इसी प्रकार हिन्दुसमाज में कितनी ही परस्पर विरोधी बातें दिखाई देती हैं । भौतिकवादी तत्त्वज्ञान के जनक मार्क्स के कई शताब्दियों पूर्व हिन्दुस्तान में देवगुरु बृहस्पति ने "असतो सत् अजायत" कह कर भौतिकवादी तत्त्वज्ञान का सूत्रपात किया तथा चार्वाक तक उसका एक सूत्रबद्ध तत्त्वप्रणाली के रूप में प्रभाव रहा । परंतु जब इस जड़वाद ने उपभोगवाद का रूप धारण कर लिया तब इसकी प्रगति रुक गयी । अब यहाँ जो आध्यात्मिक विचार हैं उनमें द्वैतवादी, अद्वैतवादी, आदि अनेक पंथ हैं । ईसाई मिशनरी जोन्स स्टॅन्ले ने अपने एक ग्रंथ की प्रस्तावना में लिखा है कि हिन्दुस्तान में उपासना की अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं फिर भी प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको

हिन्दू कहता है । यद्यपि कोई भूत-प्रेत-पिशाच को मानते हैं, कोई पत्थर-पेड़ की पूजा करते हैं, तो कोई गंगा के किनारे बैठकर आत्मा-अनात्मा-परब्रह्म की चर्चा करते हैं, तथापि सभी हिन्दू कहलाते हैं । इस बात का प्रस्तावना में उल्लेख करने के पश्चात् स्टँन्ले अपने पादरी भाईयों को सावधान करते हैं कि— Beware of this Octopus of Hinduism, "It may one day eat up your christ also." मैं समझता हूं कि हमारे राजनैतिक नेताओं की तुलना में जोन्स स्टॅन्ले ने हिन्दुओं को अच्छा समझा है । जब सभी प्रकार की उपासना पद्धतियों का हिन्दुओं में समावेश हो सका है तो और दो चार उपासना पद्धतियों को अपने में समा लेना उसके लिए कोई बड़ी कठिन बात नहीं है, इस भय के कारण ही संभव है कि जोन्स स्टँन्ले ने अपने पादरी भाइयों को हिन्दुओं से सावधान रहने की चेतावनी दी होगी ।

## विभिन्न धर्मों में विरोध नहीं है

वास्तव में रिलिजन के स्तर पर कोई झगड़ा खड़ा नहीं हो सकता है । विभिन्न मसीहाओं ने विभिन्न देशों में अपने अपने श्रोताओं की प्रवृत्तियों तथा परिस्थितियों के अनुसार ईश्वर-मनुष्य के संबंध में चर्चा विभिन्न भाषाओं में की है, परन्तु सबका सार मनुष्य-ईश्वर का सम्बन्ध ही है । यदि ईसा मसीह ने कहा कि "Glory be unto thy name ।" तो हमारे यहां इसे द्वैत कहा गया है। ईसा मसीह का यह कथन कि "I am in my father, he in you and you in me", हिन्दुओं का विशिष्टाद्वैत है । उनका यह कथन कि I and my father are one, I am the way, the truth and the life, हमारे "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" "अहं ब्रह्मास्मि" तथा अद्वैत की ही प्रतिध्वनि है ।

## सब धर्मों का महासंघ–हिन्दुत्व

अब ऊपर के बिचार हमारे विचारों में आ सकते हैं । क्यों कि हिन्दुओं में धर्म के बारे में कठमुल्लापन (Fanaticism) नहीं है । हमारे यहां तरह तरह के सम्प्रदाय हैं । हम तो तेहत्तीस करोड़ देवताओं के पूजक हैं । अब जिनके पूजागृह में–Sanctum sanctorum–इतना प्रशस्त स्थान है उनके यहां एक अल्लाह या एक मसीहा को स्थान मिल जाना कठिन बात नहीं है । वैसे हिन्दुत्व कोई 'वाद' नहीं है । अब सुविधा के लिए उसका उपयोग किया तो उसका अभिप्राय–सब धर्मों का संघ–The confederation of all religions including materialism है । मार्क्सवाद भी अब एक पूर्ण सम्प्रदाय बन गया है । एक ग्रंथ Das capital, एक मसीहा मार्क्स, एका अल्लाह Dilecticism आदि साम्प्रदायिक विशेषताएं उसमें पायी जाती हैं । सब सम्प्रदायों के लिए हमारा sanctum sanctorum–पवित्र

पूजागृह खुला हैं। इसलिए हिन्दूधर्म के कारण जो साम्प्रदायिकता की बात उठाते हैं, वे हिन्दू को समझ नहीं पाये हैं। हिन्दू नाम का कोई सम्प्रदाय नहीं है हिन्दुओं के कई सम्प्रदाय हैं। संघ के सरसंघचालक श्री गुरुजी ने तो यहां तक कहा है कि जब दूसरे सम्प्रदायों के प्रति सहिष्णुता की बात कही जाती है तो उसका अर्थ यह होता है कि एक श्रेष्ठ और दूसरा हीन सम्प्रदाय है तथा दूसरे के प्रति सहिष्णुता दिखाई जा रही है। यह विचार गलत है। उन्होंने कहा है कि सब धर्मो के प्रति हमारे मनमें समादर की भावना है। मुसलमान कुरान पढ़ सकते हैं, मस्जिद में जा सकते हैं, धार्मिक नेता के नाते महंमद पैगंबर का स्मरण कर सकते हैं। ईसाई बाइबल पढ़ सकते हैं, गिरजा-घरों में जा सकते हैं। यहां सबको उपासना की स्वतंत्रता है। परन्तु यहां राष्ट्र एक है, जन एक है, संस्कृति एक है इस बात का कदापि विस्मरण नहीं होना चाहिए।

## साम्प्रदायिकता विरुद्ध राष्ट्रीयता

वास्तव में झगड़ा रिलिजन का नहीं है, तो झगड़ा इस बात का है कि रिलिजन और राष्ट्रीयता का अपना अपना न्यायोचित अधिकारक्षेत्र क्या होना चाहिए। यह झगड़ा हमारे कारण नहीं है। जब रिलिजन अपने अधिकारक्षेत्र का अतिक्रमण करता है तब संघर्ष निर्माण होता है। अब यह संघर्ष हिंदुस्थान में ही होता है ऐसी तो बात नहीं हैं। शत प्रतिशत इस्लाम मतावलम्बी देशों में भी यह संघर्ष हुआ है। मिस्र शत प्रतिशत इस्लाम मतावलम्बी देश है। वहां पहिले खिलाफत थी। जिस प्रकार ईसाई जगत पर पोप का अधिराज्य चलता था उसी प्रकार इस्लाम जगत् पर खलिफा का प्रभुत्व माना जाता था। बाद में खिलाफत टूट गयी। यह सर्व विदित है कि हिन्दुस्थान के मुसलमानों ने खिलाफत के पुनरुज्जीवन के लिए बड़ा प्रयास किया था और हिंदुओं ने स्वराज्य की लड़ाई में मुसलमानों का सहयोग प्राप्त करने की आशा से, उनकी सहायता की। अब जिस तुर्कस्तान में खिलाफत की गद्दी थी उसी ने उसके पुनरुज्जीवन का विरोध किया। परन्तु हिन्दुओं ने उसके लिए बड़ा आग्रह किया। यहां से एक प्रतिनिधिमंडल तुर्कस्तान के अध्यक्ष मुस्तफा कमाल पाशा से भी मिलने गया था। कमाल पाशा ने इस प्रतिनिधिमंडल को बताया कि वे खिलाफत का पुनरुज्जीवन नहीं होने देंगे। तब प्रतिनिधिमंडल ने उन्हें समस्त मुस्लिम जगत् का खलिफा बनाने की लालच दिखाई। परन्तु कमाल पाशा जो कि एक राष्ट्रीय नेता थे, वह प्रस्ताव ठुकरा दिया। इतिहास में यह एक बड़ा अद्‌भुत दृश्य देखने को मिलता है कि एक ओर तो हिन्दू खिलाफत के पुनरुज्जीवन के लिए अपनी अधिकारकक्षा के बाहर जाकर प्रयत्न कर रहे हैं और दूसरी ओर मुसलमान राष्ट्र का राष्ट्रपति मुस्तफा कमाल पाशा उसे अस्वीकार कर रहा है।

## मिस्र में राष्ट्रीयता का उदय

मिस्र में राष्ट्रीयता की जागृति के साथ प्राचीन इतिहास का अभिमान जाग उठा। जो फॅरोव्हा राजा थे, जिन्होंने प्रचण्ड पिरामिडों का निर्माण किया था उनके प्रति अभिमान की लहर दौड़ गयी तथा रास्तों, ग्रंथालयों को उनके नाम दिये जाने लगे और स्थान स्थान पर उनकी प्रतिमाएं स्थापित होने लगी। परन्तु धर्मान्ध लोगों ने यह कह कर कि फरोव्हा राजा काफिर थे उसका विरोध किया। अब फरोव्हा राजा महंमद पैगंबर के कई शताब्दियों पूर्व हुए थे अतः उनका मुसलमान होना कैसे संभव था। तब नव जागृत राष्ट्रवादी मिस्रियों तथा धर्मान्ध मिस्रियों के बीच जोरदार संघर्ष हुए। जब अफगानिस्तान में अमानुल्ला ने राष्ट्रीयता का भाव जगाने का प्रयास किया तो मुल्ला मौलवियों ने घोर विरोध कर उसको कुचल डाला। क्योंकि अमानुल्ला उतने प्रभावशाली नहीं थे। जब इरान में भी इस्लाम के उदय के पूर्व के अपने पराक्रमी राष्ट्रपुरुषों–रुस्तम, पहेलवी, बहराम–का अभिमान जागृत किया तब भी विरोध हुआ था परन्तु वहां राष्ट्रवादी शक्ति की विजय हुई। तुर्कस्तान ने तो ऑटोमन साम्राज्य की ही नहीं तो इस्लाम के पूर्व के साम्राज्य की भी स्मृति जागृत रखी। उसने इस्लाम के नाम पर अरब राष्ट्रवाद को ग्रहण करने से अस्वीकार कर दिया। उसने बुर्का हटा दिया, पोशाख में परिवर्तन कर दिया, तथा तुर्की भाषा में कुराण का अनुवाद कराया। कमाल पाशा का मुल्ला मौलवियों ने घोर विरोध किया। भला कुराण का कहीं अनुवाद भी हो सकता है इस रुढिवादी धर्मान्ध मुल्ला मौलवियों ने कमाल पाशा का घोर विरोध किया। तब कमाल पाशा तथा उनके पथप्रदर्शक झिया गॉक आल्प (Ziya Gok Alp) ने उनका डटकर विरोध किया। उन्होंने कहा कि भगवान् इतना अनाडी नहीं है कि वह अरबी छोड़कर अन्य भाषाओं में की गई प्रार्थना नहीं समझ सकता। यह ऐतिहासिक सत्य है कि जिस दिन तुर्कस्तान में तुर्की भाषा में लिखा गया कुराण मस्जिदों में पढा गया उस दिन सारे देश में भीषण रक्तपात हुआ। वहाँ एक ओर इस्लाम को गलत ढंग से सार्वजनिक जीवन में लानेवाले लोग थे तो दूसरी और नवजागृत राष्ट्रवादी लोग थे। अब हमारे यहां के अजातीयवादी, अन्तरराष्ट्रीयतावादी, अंतरिक्ष-संचारी नेताओं से पूछा जा सकता है कि भाईयो! तुर्कस्तान में कौनसा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ था? फिर बताइये तो वहाँ भला दंगे क्यों हुए! इस्लाम को माननेवाले मुस्तफा कमाल पाशा के मन में कुराण और मस्जिद के प्रति नितान्त आदर था परन्तु वह उसे व्यक्तिगत श्रद्धा का विषय मानते थे। उन्हें सार्वजनिक जीवन में धर्म का हस्तक्षेप होना अमान्य था।

शतप्रतिशत इस्लामी देशों में राष्ट्रवाद के साथ इस्लाम का जो गलत अर्थ लगाया जाता है वह वास्तव में इस्लाम और उसके प्रेषित महंमद पैगंबर

के साथ अन्याय है। वैसे राष्ट्रीयता और इस्लाम का मेल बैठ सकता है। महंमद साहब ने स्पष्ट रूप से कहा है कि भगवान् ने हरएक जाति के लिए अपने अपने प्रेषितों का निर्माण किया है। (२) परन्तु इन बातों की ओर देखने का किसी को अवसर ही नहीं है। वे तो इस्लाम को केवल राजनैतिक सौदेबाजी का एक साधन बनाना चाहते हैं। राष्ट्रवाद के विरोध में इस्लाम है इस प्रकार की भ्रामक कल्पना सामने रखी जाने के कारण ही मुस्लिम देशों मे दंगे-फिसाद हुए हैं। इंडोनेशिया इस्लामधर्मी है परन्तु उसकी राष्ट्रीय संस्कृति हिन्दू है। जिस समय इंडोनेशिया स्वतंत्र हुआ तब वहां के तत्कालीन राष्ट्रपति डा. सुकर्णो ने भारत के प्रधानमंत्री स्व. पं जवाहरलालजी को पत्र लिखा था कि "हम आप के बड़े ऋणी हैं, क्योंकि आपकी जो सांस्कृतिक विरासत है उसका हम उपभोग कर रहे हैं।" इंडोनेशिया में मुसलमान बहु-संख्य हैं परन्तु वे श्री रामचंद्र को अपना राष्ट्रपुरुष मानते हैं। वहाँ रामलीला तथा महाभारत की कथाएँ होती हैं। इसके कारण वहाँ इस्लाम अपवित्र नहीं हुआ है।

हम इस्लाम को मानते हैं इसलिए राष्ट्रीय संस्कृति को छोड़ देना चाहिए यह बात बिल्कुल गलत है। इस दृष्टि से हिंदुस्थान में जो संघर्ष है वह हिन्दू विरुद्ध मुसलमान न होकर, इस्लाम का न्यायोचित अधिकारक्षेत्र क्या हो इस बात पर है। राष्ट्रीयता का और इस्लाम के न्यायोचित अधिकारक्षेत्र का अपने यहाँ विचार करनेपर यह ज्ञात हो जाएगा कि इस राष्ट्र में हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयत्व है। क्योंकि हिन्दू नाम का कोई धर्म नहीं है। यहाँ के निवासी सब हिन्दू हैं। क्या मुसलमान हिन्दू नहीं हैं? ऐसे कितने मुसलमान हैं जो यहाँ अरबस्तान से आये हुए हैं? ये सभी लोग यहीं के रहनेवाले थे। उनका जबरन धर्मान्तर किया गया। वे स्वतंत्रतापूर्वक अपनी उपासनापद्धति पर चल सकते हैं। किन्तु साथ ही वे यह भी कहें कि वे इस हिन्दूपरिवार के, हिन्दूरक्त और खानदान के हैं। और राष्ट्र के नाते हिन्दू हैं। इस मातृभूमि के प्रति वही श्रद्धा रखें जो हमारे मन में है। इस देश के इतिहास के बारे में वही भावना रखें जो हमारे मन में है। इतिहास में मान-अपमान, उत्थान-पतन, वैभव-विपन्नता तथा सुख-दुःख के जो अवसर आते हैं उनके विषय में उनकी और हमारी अनुभूति एक होनी चाहिए। आज की परिस्थिति तथा भविष्य की राष्ट्रीय आकांक्षाओं के विषय में उनके हमारे विचार, भाव एक होना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब रिलिजन को नितांत व्यक्तिगत मान कर वे चलते हैं।

## राष्ट्र एक इकाई—

अपने यहाँ लोग हिन्दु-मुस्लिम एकता की बात करते हैं। परन्तु इसका अर्थ यह होता है कि हिन्दुस्थान में एक से अधिक इकाईयाँ हैं। परन्तु हमारा

कहना है कि सम्पूर्ण राष्ट्र एक इकाई है इस सत्य को ग्रहण कर चलने से सारे झगडे समाप्त हो जाएगे ।

## आत्मसात् करने का कार्य

लोक शंका उठाते हैं कि अन्य लोगों को हिंदुओं ने आत्मसात् किया होगा परन्तु मुसलमानों का प्रश्न वैसा नहीं हैं ? उन्हें आत्मसात् करना बड़ा कठिन कर्म है । वैसे उन्हें आत्मसात् करने में कौनसी कठिनाई है ? हमारे समाज ने सदा सब को आत्मसात् किया है और यदि राजनीतिज्ञ इस कार्य में अडंगा नहीं डालते तो आज भी हम सब को आत्मसात् कर सकते हैं । यह तो हमारी संस्कृति की विशेषता है, और उसमें वह क्षमता भी हैं । इतिहास काल में वह हुआ है, वर्तमान परिस्थिति में भी हुआ है ।

## मुसलमानों का भारतीयकरण

प्रारंभ में मुसलमानों में आक्रमक प्रवृत्ति थी परंतु वे जैसे जैसे यहां स्थायी होते गए वैसे वैसे बुद्धिमान् मुसलमानों में इस देश की संस्कृति, धर्म जानने की उत्सुकता निर्माण हुई । जहांगीर तथा शहाजहां के शासनकाल में हिंदुओं के अनेक संस्कृत ग्रंथों का फारसी भाषा में अनुवाद हुआ । (३) इन अनुवादों के पढने से उनके विचारों में परिवर्तन होने लगा । परन्तु औरंगजेब को यह लगा कि इससे तो मुसलमानों का हिन्दुकरण-राष्ट्रीयकरण हो रहा है । उसने धर्मान्धता धारण की । उसने अपने बड़े भाई दाराशिकोह को मरवा डाला । औरंगजेब की उसके प्रति यह शिकायत थी कि वह विचारों से आधा हिंदू है । (४) मुसलमानों के राष्ट्रीयकरण की प्रक्रिया औरंगजेब को अपने राजनैतिक प्रभुत्व के मार्ग में बाधास्वरूप लगी और बाध्य होकर उसने उसका कड़ा विरोध किया ।

## श्रेष्ठ संस्कृति की पाचक शक्ति

मुसलमान नाम से जो विभिन्न जातियाँ अपने देश में आयी थी, उनका-हिन्दुकरण होने लगा था इस बात का विवरण कार्ल मार्क्स ने भी किया है । अपने पत्रों में वे लिखते हैं।

"Arabs, Turks,Tartars, Moguls who had successively overrun India, soon became Hinduised, the barbarian conquerors being, by an eternal law of history, conquered themselves by the superior civilisation of their subjects." (२२ जुलाई १८५३ में कार्ल मार्क्स द्वारा लंदन से लिखे गए पत्र में से उद्धृत).

(यद्यपि अरब, तुर्क, तातरि, मुगल लोगों ने हिंदुस्थान को पादाक्रान्त किया तथापि शीघ्र ही उनका हिन्दूकरण हो गया । इतिहास का यह सनातन

नियम है कि जंगली विजेताओं को जित राष्ट्र को श्रेष्ठ की संस्कृति के सामने परास्त होना पड़ता है।)

## राष्ट्रीयकरण के मार्ग में बाधा

हिंदुस्थान में यह प्रक्रिया चल रही थी परंतु जब यह देखा गया कि इसके कारण राजनैतिक प्रभुत्व की आकांक्षा में बाधा आती है तो उसमें कुछ लोगों ने अडंगे डालना शुरू कर दिया और उस प्रक्रिया को रोक दिया। अंग्रेजों के समय राजनैतिक नेताओं ने न्यूनगंड के कारण इस प्रक्रिया को रोक दिया। मुसलमानों को पृथक् रहने दिया गया। उनसे कहा गया कि हम आपके साथ एकता करने जा रहे हैं अतः आप अपना पृथक् अस्तित्व बनाये रखो। इस प्रकार एकात्मता निर्माण होने नहीं दी गयी। अंग्रेजों के चले जाने के बाद भी एकात्मता निर्माण करने के कार्य में बाधा पैदा की जा रही है। यह सोचकर कि यदि वास्तव में सम्पूर्ण समाज एक हो जाता है और एक जन, एक संस्कृति, एक राष्ट्र के रूप में वह खड़ा हो जाता है तो मंत्रिपदों का फिर क्या होगा? ४ करोड़ मत हमारे हाथ से चले जाएंगे। इसलिए आज भी राजनैतिक नेतागण मुसलमानों को पृथक् रखने का प्रयास कर रहे हैं। किसी ने सच कहा है कि

"Politicions in every country have a knack of exploiting religious sentiments for the furtherancc of their political ends when priesthood makes common cause with a gang of politicions, the combination becomes to formidable for an average believer."

वैसे औरंगजेब के पहिले और बाद, और अंग्रेजों के शासनकाल में भी स्वाभाविक रूप से मुसलमानों का हिन्दुकरण या राष्ट्रीयकरण हो रहा था। (४) पाकिस्तान कल्पना के जनक अल्लामा इकबाल ने मुसलमानों को चिढ़ाने के लिए 'जवाब ए शिकवा नामक कविता लिखी थी। कविता फारसी में है परन्तु उन्होंने उसका अंग्रेजी अनुवाद स्वयं किया हुआ है। अब इकबाल साहब ने कविता दूसरे उद्देश्य से लिखी, परन्तु उसमें मुसलमानों के हिन्दूकरण के प्रति क्षोभ प्रकट किया गया है। डा. शौकत अल्ला अन्सारी ने कहा है कि "Islam in India is the Arabic version of Sanatan dharma". (५) इससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि आत्मसात् करने की प्रक्रिया शुरू हो गयी थी। अब प्रक्रिया को क्यों रोका जा रहा है।

## मिली जुली संस्कृति

हमारा सिद्धान्त है कि सब एक हैं। परन्तु कुछ राजनैतिक नेतागण संयुक्त राष्ट्रीयता, मिली जुली संस्कृति की भाषा बोलते हैं। अब इन नेताओं से पूछा जाए कि "भाई हम तो रहे प्राचीन परम्परावादी, भला आधुनिक दुनिया में आप एक तो भी उदाहरण बतलाइये जहां संयुक्त राष्ट्रीयता और मिली जुली संस्कृति"

की वात टिक सकी है। लोग इस संदर्भ में अमेरिका का उदाहरण बतलाते हैं। परन्तु यह उदाहरण तो हमारे ही कथन की पुष्टि करता है। अमेरिका में योरोप के विभिन्न देशों से आए हुए जर्मन, फ्रान्सीसी, डॅनिश, स्वीडिश, अंग्रेज जाकर बसे और प्रथम महायुद्ध तक अपनी अपनी संस्कृति के अभिमानी बने रहे। परन्तु जब इंग्लैंड और जर्मनी के बीच प्रथम महायुद्ध छिड़ गया तब अमेरिकानिवासी १० लाख जर्मनों के मन में इस प्रवृत्ति का उदय हुआ कि अमेरिका में एँग्लोसैक्सन लोगों का प्रभुत्व क्यों चलने दिया जाए, क्यों न हम राज्य के अन्तर्गत अपना अलग राज्य स्थापित करें। तब प्रेसिडेंट विल्सन ने जर्मनवंश के सभी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। प्रथम महायुद्ध तक अमेरिका में इस बात पर गर्व किया जाता रहा कि यहां कोई भी आकर एकात्म हो जाता है। उस समय लिखे गये 'Melting pot' नामक नाटक में इन विचारों का प्रतिबिंब दिखाई देता है। परन्तु जब जर्मनों ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया तब लोगों की आंखें खुली और प्रथम महायुद्ध के पश्चात् सन् १९१८ से लेकर १९३९ तक तीन सांस्कृतिक आंदोलन वहाँ एंग्लो-सैक्सन लोगों ने चलाए। उन्होंने एंग्लो-सैक्सन राष्ट्रीयता को आधार मानकर वैसा डंके की चोट पर कहा। जितने भी गैर एंग्लोसैक्सन लोग थे उन्हें उस संस्कृति के साथ एकात्म होने के लिए कहा गया। इसके फलस्वरूप बाहर से आनेवाले गैर एंग्लो-सैक्सन लोगों के प्रवेश पर रोक लगायी गयी तथा सीमित संख्या में ही लोगों को प्रवेश देने के नियम बनाये गए। इस प्रकार आत्मसात् होने की क्रिया को प्रोत्साहन दिया गया। इसका सुफल द्वितीय महायुद्ध के समय देखने को मिला। जब अमेरिका ने उसमें भाग लिया तब उसके सामने प्रथम महायुद्ध जैसी जर्मन लोगों की समस्या खड़ी नहीं हुई।

## कैनेडा का उदाहरण

दूसरा उदाहरण कैनेडा का है। वहाँ फ्रांसीसी और अंग्रेज रहते हैं। प्रमुखता से वहाँ एंग्लो सैक्सन वंश के लोग रहते हैं। प्रथम दोनों ने मिली जुली संस्कृति की बात चलाई। प्रथम और द्वितीय महायुद्ध में इंग्लैंड और फ्रांस एक ही पक्ष में होने से कैनेडा में कोई समस्या पैदा नहीं हुई। परन्तु इसके बाद द गॉल के फ्रांस के राष्ट्रपति बनने पर कैनेडा के फ्रांसीसी लोगों में पृथक् फ्रांसीसी राष्ट्रीयता और फ्रांसीसी राज्य की बात बल पकड़ते गयी, द गॉल फ्रान्स को योरोप में प्रथम श्रेणी के राष्ट्र के रूप में देखना चाहते थे, नेपोलियन की महत्त्वाकांक्षा को पुनः साकार करना चाहते थे। उसी की प्रतिक्रिया कैनेडा के फ्रांसीसी लोगों में हुई। सेनापति द गॉल जब कैनेडा के दौरे पर गये थे तब उन्होंने एक नागरिक–अभिनंदन–समारोह के अवसर पर कह डाला कि अलग फ्रांसीसी राष्ट्र और राज्य की मांग सर्वथा न्यायोचित है। परंतु यह बात राजनैतिक शिष्टाचार के प्रतिकूल होने के कारण वहाँ बड़ा

बवंडर निर्माण हुआ तथा द गॉल को अपना दौरा अधूरा छोड़कर फ्रान्स लौट जाना पड़ा। आज भी फ्रान्सीसियों द्वारा पृथकता का आंदोलन चलाया जा रहा है। इसका कारण यह है कि सांस्कृतिक एकात्मीकरण वहाँ नहीं हो पाया है। वहाँ तो यही बात चलती रही कि यह धर्मशाला है, कोई भी आए और जाए, अपना ही मकान है। इस प्रकार की गोल माल बात करने से एकात्मता निर्माण नहीं होती।

## संकीर्णता का आरोप

हमें कहा जाता है कि हम बडे संकीर्ण विचार करते हैं। हमने कहा हमारे यहाँ राष्ट्रीयता और अंतर्राष्ट्रीयता में विरोध नहीं है। परन्तु जिनका हृदय बहुत बड़ा है वे ऐसा कहते हैं। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् झेकोस्लो व्हाकिया में स्लॉव और झेक लोगों को रखा गया है। अब दोनों वंश के लोग कम्युनिस्ट होते हुए भी संस्कृतिभिन्नता के कारण एकात्म नहीं हो पाये हैं। वैसे दोनों अन्तर्राष्ट्रीयतावादी हैं। अब उस देश में रूस द्वारा हस्तक्षेप किए जाने के एक वर्ष पूर्व स्लॉव्ह लोगों ने कहा था कि उनका अलग राष्ट्र है तथा उनका अलग राज्य होना चाहिए। यदि रूस ऐसा नहीं करना चाहता हो तो, स्लॉव्ह और झेक लोगों के स्वायत्त राज्यों को स्वीकृति देकर, दोनों का संघराज्य बनाए। अब जहाँ अन्तर्राष्ट्रीयतावादी लोग भी एक दूसरे की संस्कृति में एकात्म होने के लिए तैयार नहीं होते हैं, झगड़ने के लिए खड़े हो जाते हैं वहाँ हमारे देश के लोग संयुक्त राष्ट्रीयता मिली जुली संस्कृति की बात चलाते हैं। अब जो झेकोस्लोव्हाकिया, कैनेडा, अमेरिका में नहीं हो सका वह संयुक्त राष्ट्रीयता की बात भला हमारे यहाँ कैसे चल सकती है ?

## शास्त्रशुद्ध भूमिका

अतः अब समय आ गया है कि हम शास्त्रशुद्ध भूमिका ग्रहण करें। यहां कुराण बायबिल बिल्कुल सुरक्षित हैं। अपने देश में एक जन है, एक संस्कृति है, एक राष्ट्र है इस बात का हमें अनुभव करना चाहिए और इसी दृष्टि से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने कहा है कि हम राष्ट्रीय हैं। यह जो कहा जाता है कि इसमें अन्य लोगों को प्रवेश नहीं है, बिल्कुल गलत है। बात इसके विपरीत है। बाकी लोग इसमें प्रवेश लेना नहीं चाहते हैं। हम से पूछा जाता है कि क्या एकाध राष्ट्रीय मुसलमान हो तो उसका संघ में प्रवेश हो सकता है ? हमारा कहना है कि जिस समय सामाजिक रूप से मुसलमान राष्ट्र के साथ एकात्म हो जाते हैं तो वे सारे हमारे हैं, वे सारे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में आ सकते हैं। यह बात भी सही नहीं है कि संघ में सभी हिन्दुओं को प्रवेश है और सभी अहिन्दुओं को प्रवेश नहीं है। श्री गुरुजी ने कहा है कि वे पारसियों को हिन्दु ही समझते हैं। अब पारसी तो हिन्दू नहीं है। अतः यह कहना

गलत है कि संघ में अहिन्दुओं को प्रवेश नहीं हैं। अब यह कहना भी सही नहीं है कि हम सब हिन्दुओं को प्रवेश देते हैं। ७५ प्रतिशत कम्युनिस्ट हिंदू हैं परंतु हम उनको राष्ट्रीय नहीं समझते हैं। इसलिए उन्हें संघ में प्रवेश नहीं है। हिन्दू कम्युनिस्टों को प्रवेश नहीं और हिन्दु न होते हुए भी पारसियों को प्रवेश योग्य माना गया है, इस बात को ठीक प्रकार से समझना होगा।

अब प्रश्न यह है कि हम किस दृढ नींव पर राष्ट्र को खड़ा कर सकते हैं ? क्या मिली जुली संस्कृति, संयुक्त राष्ट्रीयत्व की कल्पना पर अभेद्य राष्ट्र खड़ा हो सकता है ? या फिर प्रत्येक को अपनी अपनी उपासनापद्धति की स्वतंत्रता प्रदान करते हुए उसमें बिल्कुल हस्तक्षेप न करते हुए राष्ट्र के नाते सब लोग एक हैं, हम सब एक परिवार के सदस्य हैं, एक ही राष्ट्रपुरुष के अङ्ग-प्रत्यङ्ग हैं, हमारी यह मातृभूमि है, हम उसकी संतान हैं, सहस्त्रों वर्षों से इसकी संतान के रूप में अपना समाज यहां रहता आया हुआ है। राम–कृष्ण हमारे राष्ट्रीय पुरुष हैं, हमारे धार्मिक महापुरुष महंमद हो सकते हैं या ईसा मसीह हो सकते हैं, हमारे राष्ट्रीय ग्रंथ वेदादि हैं, कुरान या बायबिल हमारे धार्मिक ग्रंथ हो सकते हैं यहां की परम्परा राष्ट्रीय परम्परा है, यहां के जो उत्सव हैं वे हमारे राष्ट्रीय उत्सव हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण सात्मीकरण–हिन्दूकरण जब तक नहीं होता तब तक मिली जुली संस्कृतिवाली बात देश में दरार डालनेवाली है। इस शास्त्रीय विचार को लेकर हमने कहा है कि हिन्दुत्व यही राष्ट्रीयत्व है। किन्तु प्रथम हिन्दू क्या है, राष्ट्र क्या है यह समझना चाहिए। इस तरह शास्त्रीय बातों को लेकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ कार्य कर रहा है।

राष्ट्र के संबंध में गंभीरता से विचार करना होगा। १९७२ में गद्दी कैसे प्राप्त होगी इतना छोटा विचार करने से राष्ट्रनिर्माण का कार्य नहीं होगा। भाई–भाई में दरार डालनेवाली बातें करने से हानि ही होगी। राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ सच्चा राष्ट्रीय संघटन है। वह राष्ट्रनिर्माण का कार्य कर रहा है। यहां कोई राजनीति की बात नहीं है। सभी राजनैतिक दल के लोग यहां आ सकते हैं। हमने किसी के लिए दरवाजा बंद नहीं किया है, परन्तु उन्होंने हमारे लिए दरवाजा बंद किया है। सभी लोग इसमें आ सकते हैं और इस तरह से सम्पूर्ण हिन्दूसमाज अर्थात् राष्ट्रीय स्वयसेवक संघ, हिन्दूराष्ट्र अर्थात् राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ है। इसको हम निकट से देखें, समझें, पहचानें, और फिर अपनी आत्मा का जो अभिप्राय होगा, निर्णय होगा उसके अनुसार संघ के प्रति आप अपनी प्रतिक्रिया आचार-व्यवहार में लाएँ।

## भाषण में उल्लेखित संदर्भों का विवरण

1. "**Ziya Gok Alp,** who was the inspirer of modern Turkey, wanted " to build a new Turkey which would remove the gulf between Ottoman Turks and their Turanian ancestors .... He wanted to lay down a new cultural foundation with the material he had collected about cultural and political institutions from the pre-Islamic period of Turkish History. He believed that the Islam which was established by the Arabs would not suit "our purpose." " If we wish not to return to our age of ignorance we at present need a religious reform which may conform with our temperaments."

2. "The **HOLY KORAN** did not repeal the essential truths established by the religions that had gone before. God has blessed every nation with its own prophets. "**For every people there is a guide" (Koran XXII–3). "There is no distinct group of men amid whom never arose a Varner" (Koran XXXV–23).** Consequently **Hazrat Mirza Ghulam Ahmed** wrote that teachers, to whatever land they belonged, whose teachings have been operative for a good length of time and have been accepted by large section of the human race, must be held to be Godsent, for Allah never decrees that false prophets should flourish. He consequently declared that the teachings of the Lord Budha, Shri Krishna and Shri Ramachandra were undoubtedly of divine origin, though "later tamperings or intetpolations might have clouded, or even grabbled, the original teachings of these great teachers "

3. Hinduism had been influencing the Muslim elite **since the days of Alberuni. Abul Fazl** translated the elements of the **Shad-Darshanas** for the benefits of the Muslims. During Akbar's regime Muslims began to take greater interest in Sanskrit literature and the Hindu religion. During that period the **Mahabharata** the **Ramayana** and the **Atharva Veda** were made

accessible to Muslims. Akbar realised that with the Islam alone he would not be able to subjugate his H. jects intellectually. Hence his attempt to evolve a ne gion. i. e., Din Ilahi, Divine faith. **Dara** presented the tual thrust of Hinduism to the Muslim intellectuals by tran ing into persian the **Bhagwat Gita,** the **Upanishads, Prabodha Chandrodaya, Yoga Vasishtha** and **other scriptures.** The following poem of Dara is indicative of the influence of our national culture on his mind :

"Thou art in the Kaaba as well as in the Somnath Temple.
In the convent as well as in the Tavern,
Thou art the same time the light and the moth,
The wine, and the wife, the sage,
And, the fool, the friend and the stranger."

Students of Advaitavada would be able to trace the source of Dara's inspiration. There are reasons to believe that what irritated and perturbed Aurangzeb most, was the susceptibility of the high ranking Muslim minds to the iufluence of the national culture. **Even KARL MARX,** a foreigner, could not fail to discover these significant facts. On July 22, 1853, he wrote from London, "Arabs, Turks, Tartars, Moguls, who had successively overrun India, soon became Hinduised, the barbarian conquerors being by an eternal law of history; conquered themselves by the superior civilisation of their subjects.

4. **ALLAMA IQBAL,** for example, expresses his feelings in this respect in his **Jawabi-Shikwa** in the following words :

"Unto a nation faith is life; You lost your faith and fell;
When gravitation fails, must cease; Concourse celestial."
(IX–2)

"From Christians you have learnt your style,
Your culture from Hindus;
How can a race as Muslims pass,
Who shame even the Jews ?
(XVII–2)

( P. T. O. )